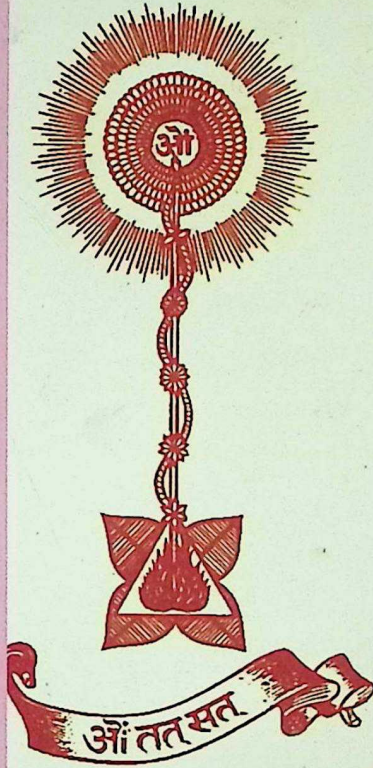




सरल राजयोग

स्वामी विवेकानन्द

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सरल राजयोग

स्वामी विवेकानन्द

अनुवादक

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री



रामकृष्ण मठ

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्रस्तावना	१
प्रथम पाठ	४
द्वितीय पाठ	८
तृतीय पाठ	१३
चतुर्थ पाठ	१७
पंचम पाठ	२०
षष्ठ पाठ	२३
परिशिष्ट	२४

सरल राजयोग

* * *

प्रस्तावना

संसार के अन्य विज्ञानों की भांति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यों का संकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माण करता है। संसार के सभी महान् उपदेष्टाओं ने कहा है, “हमने सत्य देखा और जाना है।” ईसा, पॉल और पीटर सभी ने जिन सत्यों की शिक्षा दी, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया है।

यह प्रत्यक्ष अनुभव योग द्वारा प्राप्त होता है।

हमारे अस्तित्व की सीमा केवल चेतना अथवा स्मृति नहीं हो सकती। एक अतिचेतन भूमिका भी है। इस अवस्था में और सुषुप्ति में संवेदनाएँ नहीं प्राप्त होतीं। किन्तु इन दोनों के बीच ज्ञान और अज्ञान जैसा आकाश-पाताल का भेद है। यह आलोच्य योगशास्त्र ठीक विज्ञान के ही समान तर्कसंगत है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उद्गम है।

योग हमें जड़-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है, और उसको हमारा दास होना ही चाहिए। योग का अर्थ जोड़ना है अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना, मिलाना।

मन चेतना में और उसके नीचे के स्तर में कार्य करता है। हम लोग

जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त शृंखला की एक कड़ी मात्र है।

हमारा यह 'अहम्' किंचित् मात्र चेतना और विपुल अचेतना को घेरे रहता है, जब कि उसके परे, और उसकी प्रायः अज्ञात, अतिचेतन की भूमिका है।

श्रद्धाभाव से योगाभ्यास करने पर मन का एक के बाद एक स्तर खुलता जाता है और प्रत्येक स्तर नये तथ्यों को प्रकाशित करता है। हम अपने सम्मुख नये जगत्‌ों की सृष्टि होती सी देखते हैं, नयी शक्तियाँ हमारे हाथों में आ जाती हैं, किन्तु हमें मार्ग में ही नहीं रुक जाना चाहिए, और जब हमारे सामने हीरों की खान पड़ी हो, तो काँच के मणियों से हमें चौधिया नहीं जाना चाहिए।

केवल ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है। उसकी प्राप्ति न हो पाना ही हमारी मृत्यु है।

सफलताकांक्षी साधक के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

पहली है ऐहिक और पारलौकिक इन्द्रियभोग-वासना का त्याग और केवल भगवान् और सत्य को लक्ष्य बनाना। हम यहाँ सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, भोग के लिए नहीं। भोग पशुओं के लिए छोड़ दो, जिनको हमारी अपेक्षा उसमें कहीं अधिक आनन्द मिलता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, और मृत्यु पर विजय तथा प्रकाश को प्राप्त कर लेने तक उसे संघर्ष करते ही रहना चाहिए। उसे फिजूल की बातचीत में अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। समाज की पूजा एवं लोकप्रिय जनमत की पूजा मूर्ति-पूजा ही है। आत्मा का लिंग, देश, स्थान या काल नहीं होता।

दूसरी है सत्य और भगवत्प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा। जल में डूबता मनुष्य जैसे वायु के लिए व्याकुल होता है, वैसे ही व्याकुल हो जाओ। केवल ईश्वर को ही चाहो, और कुछ भी स्वीकार न करो। जो आभास मात्र है, उससे धोखा न खाओ। सब से विमुख होकर केवल ईश्वर की खोज करो।

तीसरी बात में छह अभ्यास है :

(१) मन को बहिर्मुख न होने देना।

(२) इन्द्रिय-निग्रह।

(३) मन को अन्तर्मुख बनाना।

(४) प्रतिकाररहित सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा।

(५) मन को एक भाव में स्थिर रखना। ध्येय को सम्मुख रखो, और उसका चिन्तन करो। उसे कभी अलग न करो। समय का हिसाब मत करो।

(६) अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करो।

अन्धविश्वास का परित्याग कर दो। 'मैं तुच्छ हूँ' इस तरह सोचते हुए अपने को सम्मोहित न करो। जब तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मता की अनुभूति (वास्तविक अनुभूति) न कर लो, तब तक रात-दिन अपने आपको बताते रहो कि तुम यथार्थतः क्या हो।

इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।

हम उस सर्वातीत सत्ता या ब्रह्म की धारणा कर सकते हैं, पर उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करना असम्भव है। जैसे ही हम उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही हम उसे सीमित बना डालते हैं और वह ब्रह्म नहीं रह जाता।

हमें इन्द्रिय-जगत् की सीमाओं के परे जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है। और ऐसा करने की शक्ति हममें है भी।

(एक सप्ताह तक प्राणायाम के प्रथम पाठ का अभ्यास करने के पश्चात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को अपना अनुभव बताए।)



प्रथम पाठ

इस पाठ का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। प्रत्येक के लिए अपने व्यक्तित्व का विकास आवश्यक है। हम सभी एक केन्द्र में जा मिलेंगे। 'कल्पना-शक्ति प्रेरणा का द्वार और समस्त विचार का आधार है।' सभी पैगम्बर, कवि और अन्वेषक महती कल्पनाशक्ति से सम्पन्न थे। प्रकृति के रहस्यों की व्याख्या हमारे भीतर ही है; पत्थर बाहर गिरता है, लेकिन गुरुत्वाकर्षण हमारे भीतर है, बाहर नहीं। जो अति आहार करते हैं, जो उपवास करते हैं, जो अत्यधिक सोते हैं, जो अत्यल्प सोते हैं, वे योगी नहीं हो सकते। अज्ञान, चंचलता, ईर्ष्या, आलस्य और अतिशय आसक्ति योगाभ्यास के महान् शत्रु हैं। योगी के लिए तीन बातों की बड़ी आवश्यकता है :

प्रथम - शारीरिक और मानसिक पवित्रता। प्रत्येक प्रकार की मलिनता तथा मन को पतन की ओर ढकेलनेवाली सभी बातों का परित्याग आवश्यक है।

द्वितीय - धैर्य। प्रारम्भ में आश्चर्यजनक दर्शन आदि होंगे, पर बाद में वे सब अन्तर्हित हो जाएँगे। यह सब से कठिन समय है। पर दृढ़ रहो, यदि धैर्य रखोगे, तो अन्त में सिद्धि सुनिश्चित है।

तृतीय - अध्यवसाय या लगन। सुख-दुःख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सभी दशाओं में साधना में एक दिन का भी नागा न करो।

साधना का सर्वोत्तम समय दिन और रात की सन्धि का समय है। यह हमारे शरीर की हलचल के शान्त रहने का समय - चंचलता और अवसाद दोनों दशाओं का उस समय आधिपत्य नहीं रहता। यदि इस समय न हो सके, तो नींद से उठते ही और सोने के पूर्व अभ्यास करो। नित्य

स्नान करना - शरीर को अधिक से अधिक स्वच्छ रखना - आवश्यक है।

स्नान के पश्चात् बैठ जाओ। आसन दृढ़ रखो अर्थात् ऐसी भावना करो कि तुम चट्टान की भाँति दृढ़ हो, तुम्हें कुछ भी विचलित करने में समर्थ नहीं है। सिर, गर्दन और कमर एक सीधी रेखा में रखो, पर मेरुदण्ड के ऊपर जोर न डालो। सारी क्रियाएँ मेरुदण्ड के ही सहारे होती हैं, अतः इसको क्षति पहुँचानेवाला कोई कार्य न होना चाहिए।

अपने पैर की अँगुलियों से आरम्भ करके शरीर के प्रत्येक अंग की स्थिरता की भावना करो। इस भाव का अपने में चिन्तन करो और यदि चाहो तो प्रत्येक अंग का स्पर्श करो। प्रत्येक अंग पूर्ण है अर्थात् उसमें कोई विकार नहीं है इस प्रकार सोचते हुए धीरे धीरे ऊपर चलकर सिर तक आओ। फिर समस्त शरीर के पूर्ण यानी निर्दोष होने के भाव का चिन्तन करो। इस प्रकार विचार करो कि मुझे सत्य का साक्षात्कार करने हेतु यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त साधन है; यह वह नौका है, जिस पर बैठकर मुझे संसार-समुद्र पार करके अनन्त सत्य के तट पर पहुँचना है। इस क्रिया के पश्चात् अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से एक दीर्घ श्वास लो और उसे बाहर निकाल दो। इसके पश्चात् जितनी देर तक सरलतापूर्वक बिना श्वास लिये रह सको, रहो। इस प्रकार के चार प्राणायाम करो और फिर स्वाभाविक रूप से श्वास लो और भगवान् से ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रार्थना करो।

“मैं उस सत्ता की महिमा का चिन्तन करता हूँ, जिसने विश्व की रचना की है, वह मेरे मन को प्रबुद्ध करो।” दस-पन्द्रह मिनट इस भाव का ध्यान करो।

अपनी अनुभूतियों को अपने गुरु के अतिरिक्त और किसी को न बताओ।

यथासम्भव कम से कम बात करो।

अपने विचारों को सदगुणों पर केन्द्रित करो; हम जैसा सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं।

पवित्र चिन्तन हमें अपनी समस्त मानसिक मलिनताओं को भस्म करने में सहायता देता है। जो योगी नहीं है, वह दास है। मुक्ति-लाभ के लिए एक एक करके सभी बन्धन काटने होंगे।

इस जगत् के परे जो सत्य है, उसको सभी लोग जान सकते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता सत्य है, तो अवश्य ही हमें उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि होनी चाहिए और यदि आत्मा जैसी कोई सत्ता है, तो हमें उसे देखने और अनुभव करने में समर्थ होना चाहिए।

यदि आत्मा है, तो उसे जानने का एकमात्र उपाय है देहबुद्धि के परे जाना।

योगी इन्द्रियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित करते हैं : ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, अथवा ज्ञान और कर्म।

अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण के चार स्तर हैं : प्रथम - मन अथवा मनन अथवा चिन्तन-शक्ति। इसको संयत न करने से प्रायः यह समस्त शक्ति नष्ट हो जाती है। उचित संयम किये जाने पर यह अद्भुत शक्ति बन जाती है। द्वितीय - बुद्धि अथवा इच्छा-शक्ति (इसको बोध-शक्ति भी कहा जाता है)। तृतीय - अहंकार अथवा अहंबुद्धि। चतुर्थ - चित्त, अर्थात् वह तत्त्व, जिसके आधार और माध्यम से समस्त वृत्तियाँ क्रियाशील होती हैं। मानो यह मन का धरातल है अथवा वह समुद्र है, जिसमें समस्त वृत्तियाँ तरंगों का रूप धारण किये हुए हैं।

योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक वृत्तियों का रूप धारण करने अथवा उनमें रूपान्तरित होने से रोकते हैं। समुद्र में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार तरंगों के कारण अस्पष्ट अथवा छिन्नविच्छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् सत्स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी मन की तरंगों से विच्छिन्न हो जाता है। समुद्र जब दर्पण की भाँति तरंगशून्य होकर शान्त हो जाता है, तभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार जब चित्त अथवा मन संयम के द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी आत्मा का साक्षात्कार होता है।

यद्यपि चित्त सूक्ष्मतर रूप में जड़ ही है, तथापि वह देह नहीं है। वह देह द्वारा चिरकाल तक आबद्ध नहीं रहता। हम कभी कभी देहज्ञान भूल जाते हैं, यही इसका प्रमाण है। अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके हम इच्छानुसार इस अवस्था की प्राप्ति के लिए अभ्यास कर सकते हैं।

यदि हम ऐसा करने में पूर्ण समर्थ हो जाएँ, तो समस्त विश्व हमारे वश में हो जाए, क्योंकि हमारी इन्द्रियों द्वारा जो सब विषय हमारे समीप पहुँचते हैं उन्हीं को लेकर यह जगत् है। स्वाधीनता ही उच्च जीवन की कसौटी है। आध्यात्मिक जीवन उस समय प्रारम्भ होता है, जिस समय तुम अपने को इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त कर लेते हो। जो इन्द्रियों के अधीन हैं, वही संसारी हैं, वही दास हैं।

चित्त को तरंगों का रूप धारण करने से सम्पूर्णतया रोकने में समर्थ होने पर हमारी देह का नाश हो जाता है। इस देह को तैयार करने में करोड़ों वर्षों से हमें इतना कड़ा परिश्रम करना पड़ा है कि उसी चेष्टा में व्यस्त रहते रहते हम यह भूल गये हैं कि इस देह की प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य पूर्णत्व-प्राप्ति है। हम सोचने लगे हैं कि इस देह को तैयार करना ही हमारी समस्त चेष्टाओं का लक्ष्य है। यही माया है। हमें इस भ्रम को मिटाना होगा और अपने मूल उद्देश्य की ओर जाकर इस बात का अनुभव करना होगा कि हम देह नहीं हैं, यह तो हमारा दास है।

मन को देह से अलग करना, उसे देह से पृथक् करके देखना सीखो। हम देह के ऊपर संवेदना और प्राण को आरोपित करते हैं और फिर सोचते हैं कि वह चेतन और सत्य है। हम इतने दीर्घकाल से इस देहरूपी आवरण को पहने हुए हैं कि भूल जाते हैं कि हम और देह एक नहीं हैं। योग हमें देह को इच्छानुसार त्यागने तथा उसे अपने दास, अपने साधन, न कि स्वामी, के रूप में देखने में सहायता करता है। योगाभ्यास का प्रथम प्रमुख लक्ष्य मानसिक शक्तियों का नियन्त्रण करना है। दूसरा, उन्हें पूर्ण एकाग्रता से किसी एक विषय पर केन्द्रित करना है।

यदि तुम बहुत बात करते हो, तो तुम योगी नहीं हो सकते।

द्वितीय पाठ

इस योग का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसको प्रधानतः आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे हैं :

प्रथम – यम। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और सारा जीवन इसके द्वारा शासित होना चाहिए। इसके पाँच विभाग हैं :

(१) मन, वचन, कर्म से हिंसा न करना।

(२) मन, वचन, कर्म से लोभ न करना।

(३) मन, वचन और कर्म की पवित्रता।

(४) मन, वचन और कर्म द्वारा पूर्ण सत्यनिष्ठ होना।

(५) अपरिग्रह (किसी से कोई दान न लेना)।

द्वितीय – नियम। शरीर की देखभाल, नित्य स्नान, परिमित आहार इत्यादि।

तृतीय – आसन। मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर कमर, गर्दन और सिर सीधा रखना।

चतुर्थ – प्राणायाम। प्राणवायु अथवा जीवनशक्ति को वशीभूत करने के लिए श्वास-प्रश्वास का संयम।

पंचम – प्रत्याहार। मन को अन्तर्मुख करना तथा उसे बहिर्मुखी होने से रोकना, जड़-तत्त्व को समझने के लिए उस पर बार बार विचार करना।

षष्ठ – धारणा। किसी एक विषय पर मन केन्द्रित करना।

सप्तम – ध्यान।

अष्टम – समाधि। ज्ञानालोक की प्राप्ति – हमारी समस्त साधना का लक्ष्य।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हमें यम-नियम का अभ्यास जीवनभर करना चाहिए। जहाँ तक दूसरे

अभ्यासों का सम्बन्ध है, हमें ठीक वैसा ही करना है, जैसा कि जोंक बिना दूसरे तिनके को दृढ़तापूर्वक पकड़े पहलेवाले को नहीं छोड़ती है। दूसरे शब्दों में, हमें अपने पहले कदम को भलीभाँति समझकर उसका पूर्ण अभ्यास कर लेना है और तब दूसरा उठाना है।

इस पाठ का विषय प्राणायाम अर्थात् प्राण का नियमन है। राजयोग में प्राणवायु चित्तभूमि में प्रविष्ट होकर हमें आध्यात्मिक राज्य में ले जाती है। यह प्राणवायु समस्त देहयन्त्र का मूल चक्र है। प्राण प्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है, फिर फुफ्फुस हृदय पर, हृदय रक्त-प्रवाह पर, रक्त-प्रवाह मस्तिष्क पर तथा मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। जिस प्रकार इच्छा-शक्ति बाह्य संवेदन उत्पन्न कर सकती है, उसी प्रकार बाह्य संवेदन इच्छा-शक्ति को जागृत कर सकता है। हमारी इच्छा-शक्ति दुर्बल है, हम जड़त्व के इतने बन्धन में हैं कि हम उसकी सामर्थ्य को नहीं जान पाते। हमारी अधिकांश क्रियाएँ बाहर से भीतर की ओर होती हैं। बाह्य प्रकृति हमारे आन्तरिक साम्य को नष्ट कर देती है, किन्तु जैसा कि हमें चाहिए, हम उसके साम्य को नष्ट नहीं कर पाते। किन्तु यह सब भूल है। वास्तव में बाह्य शक्ति की अपेक्षा हमारे भीतर की शक्ति अधिक प्रबल है।

वे ही महान् सन्त और आचार्य हैं, जिन्होंने अपने भीतर के विचारराज्य को जीता है। और इसी कारण उनकी वाणी में शक्ति थी। एक उँची मीनार पर बन्दी किये गये एक मन्त्री की कहानी है* जो अपनी पत्नी द्वारा भृंग, मधु, रेशमी सूत, सुतली और रस्सी की सहायता से मुक्त हुआ। इस रूपक में स्पष्ट दर्शाया गया है कि किस प्रकार प्रथम रेशमी धागे की भाँति प्रथम प्राणवायु का नियमन करते हुए मनोराज्य को जीता जा सकता है। इसी प्राणवायु के नियमन से एक के बाद एक विभिन्न शक्तियों को वशीभूत करके अन्त में हम एकाग्रतारूपी रस्सी पकड़ सकेंगे, जिसके सहारे हम देहरूपी कारागार से उद्धार पाकर मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे। मुक्ति प्राप्त कर

* कहानी के लिए 'राजयोग' देखिए।

लेने पर उसके लिए प्रयुक्त साधनों का हम परित्याग कर सकते हैं।

प्राणायाम के तीन अंग हैं :

(१) पूरक - श्वास लेना।

(२) कुम्भक - श्वास रोकना।

(३) रेचक - श्वास छोड़ना।

मस्तिष्क में से होकर मेरुदण्ड के दोनों ओर बहनेवाले दो शक्ति-प्रवाह हैं, जो मूलाधार में एक दूसरे का अतिक्रमण करके फिर मस्तिष्क में लौट आते हैं। इन दोनों में एक का नाम 'सूर्य' (पिंगला) है, जो मस्तिष्क के वाम गोलार्ध से प्रारम्भ होकर मस्तिष्क के ठीक नीचे दूसरे प्रवाह को लाँघते हुए मेरुदण्ड के दक्षिण पार्श्व में से नीचे आता है तथा पुनः मूलाधार पर दूसरे का अतिक्रमण करता है। यह गति अंग्रेजी के आठ (८) अंक के अर्ध भाग के आकार के समान है।

दूसरे शक्ति-प्रवाह का नाम 'चन्द्र' (इडा) है, जिसकी गति पहले शक्ति-प्रवाह से ठीक विपरीत है और जो इस आठ (८) अंक को पूर्ण बनाता है। यद्यपि यह आकार आठ (८) की तरह है, परन्तु उसका निम्न भाग ऊपरी भाग से बहुत अधिक लम्बा है। ये शक्ति-प्रवाह दिन-रात गतिशील रहते हैं और विभिन्न केन्द्रों में, जिन्हें हम 'चक्र' कहते हैं, महत्त्वपूर्ण जीवन-शक्तियों का संचय किया करते हैं। पर शायद ही हम इन शक्ति-प्रवाहों का अनुभव कर पाते हैं। एकाग्रता द्वारा हम उनका अनुभव कर सकते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में चलनेवाली उनकी क्रिया को समझ सकते हैं। इस 'सूर्य' और 'चन्द्र' के शक्ति-प्रवाह श्वास-क्रिया के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं और श्वास-क्रिया के नियमन द्वारा हम समस्त शरीर को वश में कर सकते हैं।

कठोपनिषद्* में देह को रथ, मन को लगाम, इन्द्रियों को घोड़े, विषय को पत और बुद्धि को सारथि कहा गया है। इस रथ में बैठी हुई

आत्मा को रथी या रथस्वामी कहा गया है। यदि रथी समझदार नहीं है और सारथि से घोड़ों को नियन्त्रित नहीं करा सकता तो, वह कभी भी अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। अपितु, दुष्ट अश्वों के समान इन्द्रियाँ उसे जहाँ चाहेंगी, खींच ले जाएँगी; यहाँ तक कि वे उसकी जान भी ले सकती हैं। ये दो शक्ति-प्रवाह मानो सारथि के हाथों में अश्वों के नियन्त्रण के लिए लगाम हैं और अश्वों को अपने वश में करने के लिए उसे इनके ऊपर नियन्त्रण करना आवश्यक है। नीतिपरायण होने की शक्ति हमें प्राप्त करनी ही होगी। जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते, हम अपने कर्मों को नियन्त्रित नहीं कर सकते। नीति की शिक्षाओं को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति हमें केवल योग से ही प्राप्त हो सकती है। नीतिपरायण होना योग का उद्देश्य है। जगत् के सभी बड़े बड़े आचार्य योगी थे और उन्होंने प्रत्येक शक्ति-प्रवाह को वश में कर रखा था। योगी इन दोनों प्रवाहों को मेरुदण्ड के तले में रोकते हुए उनको मेरुदण्ड के मध्य से होकर परिचालित करते हैं। तब ये प्रवाह ज्ञान के प्रवाह बन जाते हैं। यह स्थिति केवल योगी ही के लिए सम्भव है।

प्राणायाम की द्वितीय शिक्षा : कोई एक ही प्रणाली सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। प्राणायाम लयपूर्ण क्रमबद्धता के साथ होना चाहिए। और इसका सब से सहज उपाय है गिनना। चूँकि यह गिनना पूर्णरूपेण यन्त्रवत् हो जाता है, हम इसके बजाय एक निश्चित संख्या में पवित्र मन्त्र 'ॐ' का जप करते हैं।

प्राणायाम की विधि इस प्रकार है : दायें नथुने को अँगुठे से दबाकर चार बार ॐ का जप करते हुए धीरे धीरे बायें नथुने से श्वास भीतर लो।

तत्पश्चात् बायें नथुने पर तर्जनी रखकर दोनों नथुनों को कसकर बंद कर दो और ॐ का मन ही मन आठ बार जप करते हुए श्वास को भीतर रोके रहो।

तत्पश्चात्, अँगुठे को दाहिने नथुने से हटाकर चार बार ॐ का जप करते हुए उसके द्वारा धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो।

श्वास बाहर निकालते समय फुप्फुस से समस्त वायु को निकालने के लिए पेट को संकुचित करो। फिर बायें नथुने को बंद करके चार बार ॐ का जप करते हुए दाहिने नथुने से श्वास भीतर लो। इसके बाद दाहिने नथुने को अँगूठे से बंद करो और आठ बार ॐ का जप करते हुए श्वास को भीतर रोको। फिर बायें नथुने को खोलकर चार बार ॐ का जप करते हुए पहले की भाँति पेट को संकुचित करके धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो। इस सारी क्रिया को प्रत्येक बैठक में दो बार दुहराओ अर्थात् प्रत्येक नथुने के लिए दो के हिसाब से चार प्राणायाम करो। प्राणायाम के लिए बैठने के पूर्व सारी क्रिया प्रार्थना से प्रारम्भ करना अच्छा होगा।

एक सप्ताह तक इस अभ्यास को करने की आवश्यकता है। फिर धीरे धीरे श्वास-प्रश्वास की अवधि को बढ़ाओ, किन्तु अनुपात वही रहे। अर्थात् यदि तुम श्वास भीतर ले जाते समय छह बार ॐ का जप करते हो, तो उतना ही श्वास बाहर निकालते समय भी करो और कुम्भक के समय बारह बार करो। इन अभ्यासों के द्वारा हम अधिक पवित्र, शुद्ध और आध्यात्मिक होते जाएँगे। किसी विपथ में मत जाओ अथवा कोई शक्ति (सिद्धि) की चाह मत करो। प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है और उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। राजयोग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल होना आवश्यक है। अपना प्रत्येक कदम इन बातों को ध्यान में रखकर ही बढ़ाओ।

लाखों में कोई बिरला ही कह सकता है, “मैं इस संसार के परे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करूँगा।” शायद ही कोई सत्य सामने खड़ा हो सके। किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमें मरने के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

तृतीय पाठ

कुण्डलिनी : आत्मा का अनुभव जड़ के रूप में न करो, बल्कि उसके यथार्थ स्वरूप को जानो। हम लोग आत्मा को देह समझते हैं, किन्तु हमारे लिए इसको इन्द्रिय और बुद्धि से अलग करके सोचना आवश्यक है। तभी हमें इस बात का ज्ञान होगा कि हम अमृतस्वरूप हैं। परिवर्तन से आशय है कार्य और कारण का द्वैत; और जो कुछ भी परिवर्तित होता है, उसका नश्वर होना अवश्यम्भावी है। इससे यह सिद्ध होता है कि न तो शरीर और न मन अविनाशी हो सकते हैं, क्योंकि दोनों में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। केवल जो अपरिवर्तनशील है, वही अविनाशी हो सकता है; क्योंकि उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

हम सत्यस्वरूप हो नहीं जाते, बल्कि हम सत्यस्वरूप हैं; किन्तु हमें सत्य को आवृत करनेवाले अज्ञान के पर्दे को हटाना होगा। देह विचार का ही रूप है - विषयीकृत विचार। 'सूर्य' और 'चन्द्र' शक्ति-प्रवाह शरीर के सभी अंगों में शक्ति-संचार करते हैं। अवशिष्ट अतिरिक्त शक्ति सुषुम्ना के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों में संचित रहती है। जिन्हे सामान्यतया स्नायु-केन्द्र कहा जाता है।

ये शक्ति-प्रवाह मृतदेह में दृष्टिगोचर नहीं होते; केवल स्वस्थ शरीर में ही ये देखे जा सकते हैं।

योगी को एक विशेष सुविधा रहती है, क्योंकि वह केवल इनका अनुभव ही नहीं करता, अपितु इन्हें प्रत्यक्ष देखता भी है। वे उसके जीवन में ज्योतिर्मय हो उठते हैं। इसी प्रकार उसके स्नायु-केन्द्र भी ज्योतिर्मय हो जाते हैं।

कार्य शक्ति तीनों अज्ञात दशायों में होते हैं। योगियों की एक

और दशा भी होती है, वह है ज्ञानातीत या अतिचेतन अवस्था, जो सभी देशों और सभी युगों में समस्त धार्मिक ज्ञान का उद्गम रही है। ज्ञानातीत दशा में कभी भूल नहीं होती। सहजात-प्रवृत्ति के द्वारा होनेवाला कार्य पूर्णरूपेण यन्त्रवत् होता है। उसमें ज्ञान नहीं रहता; किन्तु यह ज्ञानातीत दशा ज्ञान के परे की स्थिति होती है। इसे अन्तःप्रेरणा कहते हैं। योगी कहते हैं, “यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य में अन्तर्निहित है और अन्ततोगत्वा सभी लोग इसका अनुभव प्राप्त करेंगे।”

हमें ‘सूर्य’ और ‘चन्द्र’ की गतियों को एक नयी दिशा में परिचालित करना होगा और इसके लिए सुषुम्ना का मुख खोलकर उन्हें एक नया रास्ता दिखा देना होगा। जब हम इस सुषुम्ना से होकर शक्ति-प्रवाह को मस्तिष्क तक ले जाने में सफल हो जाते हैं, तब उतने समय के लिए हम शरीर से बिलकुल अलग हो जाते हैं।

मेरुदण्ड के तले त्रिकास्थि अथवा त्रिकोणाकृति हड्डी (sacrum) के निकट स्थित मूलाधार चक्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह स्थल प्रजनन-शक्ति के बीज - वीर्य - का निवासस्थान है। योगी इसको एक त्रिकोण के भीतर कुण्डली लगाकर बैठे छोटेसे सर्प के प्रतीक के द्वारा व्यक्त करते हैं। इस निद्रित सर्प को कुण्डलिनी कहते हैं। इस कुण्डलिनी को जागृत करना ही राजयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

महती काम-शक्ति को पशुसुलभ क्रिया से परावृत्त करके ऊर्ध्व दिशा में मनुष्य-शरीर के महान् विद्युत्-आधार-स्वरूप मस्तिष्क में परिचालित करते हुए वहाँ संचित करने पर वह ओज अथवा आध्यात्मिक शक्ति में परिणत हो जाती है। प्रत्येक सत्-विचार, प्रत्येक प्रार्थना उस पशुसुलभ शक्ति के कुछ अंश को ओज में परिणत करने में सहायता करती है। और इस प्रकार हमें आध्यात्मिक बल प्रदान करती है। यह ओज ही मनुष्य का सच्चा मनुष्यत्व है, और केवल मनुष्य के शरीर में ही इसका संचय सम्भव है। जिस व्यक्ति की समस्त पशुसुलभ काम-शक्ति ओज में परिणत हो गयी है, वह देवता है। उसकी वाणी में शक्ति होती है और उसके वचन जगत् को पुनरुज्जीवित

करते हैं।

योगी मन ही मन कल्पना करता है कि यह कुण्डलिनी सुषुम्ना-पथ से धीरे धीरे ऊपर उठ रही है तथा एक के बाद एक विविध स्तरों को भेदती हुई सर्वोच्च स्तर अर्थात् मस्तिष्क में स्थित सहस्रार में पहुँच रही है। काम-शक्ति मनुष्य की सर्वोच्च शक्ति है; और जब तक मनुष्य (स्त्री या पुरुष) इस काम-शक्ति को ओज में परिणत नहीं कर लेता, वास्तविक रूप में आध्यात्मिक नहीं हो सकता।

कोई शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती, उसे केवल योग्य दिशा में परिचालित किया जा सकता है। अतः हमें चाहिए कि हम अपने अंदर पहले से ही विद्यमान अद्भुत शक्तियों को अपने वश में करना सीखें और अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा, उन्हें पशुवत् स्थिति में न रखते हुए आध्यात्मिक बना दें। अतः यह स्पष्ट है कि पवित्रता या ब्रह्मचर्य ही समस्त धर्म तथा नीति की आधारशिला है। विशेषतः राजयोग में मन, वचन तथा कर्म की पूर्ण पवित्रता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। विवाहित तथा अविवाहित, सभी के लिए एक ही नियम है। देह की इन अत्यन्त सामर्थ्यशाली शक्तियों को वृथा नष्ट कर देने पर आध्यात्मिक बनना सम्भव नहीं है।

सारा इतिहास बताता है कि सभी युगों में बड़े बड़े द्रष्टा महापुरुष या तो संन्यासी और तपस्वी थे अथवा विवाहित जीवन का परित्याग कर देनेवाले थे। जिनका जीवन शुद्ध हो केवल वे ही भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्राणायाम प्रारम्भ करने से पूर्व इस त्रिकोणमण्डल को सामने लाने का प्रयत्न करो। आँखें बन्द करके मन ही मन कल्पना द्वारा इसका स्पष्ट चित्र सामने लाओ। सोचो कि यह चारों ओर से ज्वालाओं से घिरा है और उसके बीच में कुण्डलिनी सोयी पड़ी है। जब तुम्हें कुण्डलिनी स्पष्ट रूप से दिखने लगे तो अपनी कल्पना में इसे मेरुदण्ड के नीचे मूलाधार चक्र में स्थित करो और उसे जगाने के लिए कुम्भक से श्वास को अवरुद्ध करके उसके द्वारा उसके मुस्तक पर आघात करो। तुम्हारी कल्पना जितनी ही

शक्तिशाली होगी, उतनी शीघ्रता से तुम्हें यथार्थ फल की प्राप्ति होगी और कुण्डलिनी जागृत हो जाएगी। जब तक वह जागृत नहीं होती, तब तक यही सोचो की वह जागृत हो गयी है। तथा शक्ति-प्रवाहों को अनुभव करने की चेष्टा करो और उन्हें सुषुम्ना-पथ में परिचालित करने का प्रयास करो। इससे उनकी क्रिया में शीघ्रता होती है।

□□□

चतुर्थ पाठ

मन को वश में करने की शक्ति प्राप्त करने के पूर्व हमें उसका भली प्रकार अध्ययन करना चाहिए।

चंचल मन को संयत करके हमें उसे विषयों से खींच लेना होगा और उसे एक विचार में केन्द्रित करना होगा। बार बार इस क्रिया को करना होगा। इच्छा-शक्ति द्वारा मन को वश में करना होगा तथा उसकी क्रिया को रोककर उसे ईश्वर की महिमा के चिन्तन में लगाना होगा।

मन को स्थिर करने का सब से सरल उपाय है, चुपचाप बैठ जाना और कुछ समय के लिए वह जहाँ जाए, जाने देना। दृढ़तापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो, “मैं मन को भटकते हुए देखनेवाला साक्षी हूँ। मैं मन नहीं हूँ।” तत्पश्चात् मन को ऐसा सोचता हुआ कल्पना करो कि मानो वह तुमसे बिल्कुल भिन्न है। अपने को ईश्वर से एक मानो, मन अथवा जड़ पदार्थ के साथ एक करके कदापि न सोचो।

सोचो कि मन तुम्हारे सामने एक विस्तीर्ण तरंगहीन सरोवर है तथा आने-जानेवाले विचार इसकी सतह पर उठने और समा जानेवाले बुलबुले हैं। विचारों को रोकने का प्रयास न करो, वरन् कल्पनानेत्र से उनको देखते रहो और जैसे जैसे वे प्रवाहित होते हैं, वैसे वैसे तुम भी उनके पीछे चलो। यह क्रिया धीरे धीरे मन के वृत्तों को सीमित कर देगी। कारण यह है कि मन विचार की विस्तृत परिधि में घूमता है और ये परिधियाँ विस्तीर्ण होती हुई निरन्तर बढ़नेवाले वृत्तों में फैलती रहती हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि सरोवर में डेला फेंकने पर होता है। हमें इस प्रक्रिया को उलट देना है और बड़े वृत्तों से प्रारम्भ करके उन्हें क्रमशः छोटा बनाते जाना है ताकि अन्त में हम मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके उसे वहीं रोक सकें।

दृढ़तापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो, “मैं मन नहीं हूँ, मैं देखता हूँ कि मैं सोच रहा हूँ। मैं अपने मन की क्रिया का अवलोकन कर रहा हूँ”। इससे प्रतिदिन विचार और भावना से अपना तादात्म्यभाव कम-कम होता जाएगा, यहाँ तक कि अन्त में तुम अपने को मन से सम्पूर्णतया पृथक् कर सकोगे और प्रत्यक्ष अनुभव कर सकोगे कि मन तुमसे अलग है।

इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद मन तुम्हारा दास हो जाएगा और तुम उसके ऊपर इच्छानुसार शासन कर सकोगे। योगी होने की प्रथम स्थिति है - इन्द्रियों से परे हो जाना। जब वह मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जितना सम्भव हो सके, अकेले रहो। तुम्हारे आसन की ऊँचाई सुविधाजनक हो। प्रथम कुशासन बिछाओ, उस पर मृगचर्म और उसके ऊपर रेशमी कपड़ा। अच्छा होगा कि आसन के साथ पीठ टेकने का साधन न हो और वह स्थिर हो।

चूँकि विचार एक प्रकार के चित्र हैं, अतः हमें उनकी सृष्टि नहीं करनी चाहिए। हमें अपने मन से सारे विचार दूर हटाकर उसे रिक्त कर देना चाहिए। ज्योंही विचार आएँ, त्योंही उन्हें दूर भगाना चाहिए। इस कार्य में समर्थ होने के लिए हमें जड़ वस्तु और देह के परे जाना परमावश्यक है। वस्तुतः मनुष्य का समस्त जीवन ही इसे साधने का प्रयास है।

प्रत्येक ध्वनि का अपना अर्थ होता है। हमारी प्रकृति में ये दोनों परस्पर-सम्बद्ध हैं।

हमारा सर्वोच्च आदर्श ईश्वर है। ईश्वर का ध्यान करो। हम ज्ञाता को नहीं जान सकते, हम तो वही हैं।

अशुभ को देखना तो उसकी सृष्टि ही करना है। जो कुछ हम हैं, वही हम बाहर भी देखते हैं, क्योंकि यह जगत् हमारा दर्पण है। यह छोटासा शरीर हमारे द्वारा रचा हुआ एक छोटासा दर्पण है; समस्त विश्व ही हमारा शरीर है। इस बात का हमें सतत चिन्तन करना चाहिए, इससे हमें ज्ञान होगा कि न तो हम मर सकते हैं और न दूसरों को मार सकते हैं, क्योंकि

वह तो हमारा ही स्वरूप है। हम जन्मरहित और मृत्युरहित हैं तथा हमें प्रेम ही करते रहना चाहिए।

“यह समस्त विश्व मेरा शरीर है। समस्त स्वास्थ्य, समस्त सुख मेरा सुख है, क्योंकि यह सब कुछ विश्व के अन्तर्गत है।” कहो, “मैं विश्व हूँ।” अन्त में हमें ज्ञात हो जाता है कि सारी क्रिया हमारे भीतर से इस दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रही है।

यद्यपि हम छोटी छोटी लहरों के समान प्रतीत हो रहे हैं, तथापि हमारे पीछे आधार के रूप में सम्पूर्ण समुद्र है और हम उसके साथ एक हैं। लहर का अपने आपमें कोई अस्तित्व नहीं है। कोई लहर समुद्र को छोड़कर नहीं रह सकती।

यदि कल्पना-शक्ति का योग्य उपयोग किया जाए, तो वह हमारी परम हितैषिणी है। वह युक्ति के परे जा सकती है और वही एक ऐसी ज्योति है, जो हमें सर्वत्र ले जा सकती है।

अन्तःप्रेरणा हमारे भीतर से उठती है। हमें स्वयं अपनी उच्च मनःशक्तियों की सहायता से इसे जगाना होगा।

□□□

पंचम पाठ

प्रत्याहार और धारणा : भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, “जो किसी भी रास्ते से मुझे खोजते हैं, वे मेरे ही समीप पहुँचेंगे।” “वे सभी मेरे पास पहुँचेंगे।” मन को समस्त विषयों से खींच लाकर एकत्र करते हुए किसी अभीष्ट विषय में एकाग्र करने की चेष्टा का ही नाम प्रत्याहार है। इसका प्रथम सोपान है मन को स्वच्छन्द गति से भटकने देना; उस पर नजर रखो, देखो कि वह क्या चिन्तन करता है; स्वयं केवल साक्षी बनो। मन आत्मा नहीं है। वह केवल सूक्ष्मतर रूप लिये हुए जड़ ही है। हम उसके मालिक हैं और स्नायविक शक्तियों के द्वारा इच्छानुसार इसका उपयोग करना सीख सकते हैं।

जिसे हम मन कहते हैं, शरीर उसी का बाह्य रूप है। आत्मस्वरूप हम शरीर और मन दोनों से परे हैं। हम आत्मा हैं – नित्य, अविकारी, साक्षी। शरीर विचार-शक्ति का घनीभूत रूप है।

श्वास-क्रिया जब वाम रन्ध्र से हो, तब विश्राम का समय है; जब दक्षिण रन्ध्र से, तब कार्य का, और जब दोनों से हो, तब ध्यान का। जब हम शान्त हों और दोनों नासिक-रन्ध्रों से समान रूप से श्वास ले रहे हों, तब समझना चाहिए कि हम ध्यान की उपयुक्त स्थिति में हैं। पहले ही एकाग्रता के लिए प्रयत्न करने से कोई लाभ नहीं होता। विचारों का निरोध अपने आप होगा।

अँगूठे और तर्जनी से नासिका-रन्ध्रों को बंद करने का पर्याप्त अभ्यास कर लेने के पश्चात् हम केवल अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा, विचार मात्र से ऐसा करने में समर्थ होंगे।

अब मायागाम में कुछ परिवर्तन करना होगा। यदि साधक को इष्टमन्त्र

प्राप्त हुआ हो, तो रेचक और पूरक के समय उसे ॐ के बदले उस मन्त्र का जप करना चाहिए और कुम्भक के समय 'हुम्' मन्त्र का जप करना चाहिए।

'हुं'कार के प्रत्येक जप के साथ अवरुद्ध श्वास का कुण्डलिनी के सिर के ऊपर जोर से आघात करो और कल्पना करो कि ऐसा करने से वह जाग रही है। अपने को ईश्वर से एक समझो। कुछ समय बाद विचार अपने आगमन की सूचना देंगे और वे कैसे प्रारम्भ होते हैं, इस बात का हमें ज्ञान होगा। जिस प्रकार जागृत अवस्था में हम प्रत्यक्षतः किसी आदमी को आते हुए देखते हैं उसी प्रकार हम अपने आगामी विचार को पहले ही देख सकेंगे। इस सीढ़ी तक हम सभी पहुँच पाते हैं, जब कि हम अपने को अपने मन से अलग करना सीख लेते हैं तथा अपने को अलग और अपने विचार को अलग वस्तु के रूप में देखने लगते हैं। विचार तुम्हें पकड़ने न पाए, सदा उनसे दूर खड़े रहो, वे नष्ट हो जाएँगे।

इन पवित्र विचारों का अनुसरण करो; उनके साथ चलो और जब वे विलीन हो जाएँगे, तब तुम्हें सर्वशक्तिमान् भगवान् के चरणों के दर्शन होंगे। यह स्थिति ज्ञानातीत (अतिचेतन) अवस्था है। जब विचार विलीन हो जाएँ, तब उसी का अनुसरण करो और तुम भी विलीन हो जाओ।

तेजोमण्डल अन्तर्ज्योति के प्रतीक हैं और योगी उनका दर्शन कर सकते हैं। कभी कभी हमें किसी का मुख ऐसी ज्योति से मण्डित दिखाई देगा, जिसमें हम उसके चरित्र की झलक पा सकेंगे और उसके बारे में एक अचूक निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे। कभी हमें अपने इष्ट के दिव्य दर्शन हो सकते हैं और इस प्रतीक को आलम्बन बनाकर हम सरलतापूर्वक अपने मन को पूर्णरूपेण एकाग्र कर सकते हैं।

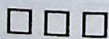
यद्यपि हम सभी इन्द्रियों की सहायता से कल्पना कर सकते हैं, तथापि अधिकतर हम आँखों का ही उपयोग करते हैं। कल्पना भी अर्ध-जड़ ही है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बिना रूप के हम विचार नहीं कर सकते। चूँकि परमेश्वर भी विचार करते-करते स्वरूप हो जाते हैं, किन्तु उनके

पास शब्द नहीं है, अतः यह सम्भव है कि विचार और रूप के बीच में कोई अविच्छेद्य सम्बन्ध न हो।

योग में कल्पना को बना रहने दो, पर ध्यान रखो कि वह शुद्ध और पवित्र रहे। कल्पना-शक्ति की प्रक्रिया के सन्दर्भ में हमारी सब की अपनी अपनी अलग विशिष्टताएँ हैं। जो मार्ग तुम्हारे लिए सब से अधिक स्वाभाविक हो, उसी का अनुसरण करो; वही सरलतम मार्ग होगा।

हमारा वर्तमान जीवन अनेक पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है। बौद्ध लोग कहते हैं, “एक से दूसरा दीप जलाया गया।” दीप भिन्न भिन्न है, प्रकाश एक ही है।

सदा प्रसन्न रहो, वीर बनो, नित्य स्नान करो और धैर्य, पवित्रता और लगन बनाये रखो। तभी तुम यथार्थतः योगी बनोगे। जल्दबाजी कदापि न करो और यदि उच्चतर शक्तियाँ प्रकट होती हैं, तो याद रखो कि वे तुम्हारे अपने मार्ग से भिन्न पगडण्डियाँ हैं। वे तुम्हें लुभाकर अपने मुख्य पथ से भ्रष्ट न कर पाएँ। उन्हें दूर कर दो और अपने एकमात्र लक्ष्य ईश्वर को दृढ़ता से पकड़े रहो। केवल अनन्त की चाह करो, जिसे पाकर हमें चिरन्तन शान्ति प्राप्त होगी। पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करने पर फिर प्राप्त करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; हम सदा के लिए मुक्त और पूर्ण हो जाते हैं -- पूर्ण सत्-चित्-आनन्द!



षष्ठ पाठ

सुषुम्ना : सुषुम्ना का ध्यान करना अत्यन्त लाभदायक है। तुम इसका चित्र अपने भाव-चक्षुओं के सामने लाओ, यह सर्वोत्तम त्रिधि है। तत्पश्चात् देर तक उसका ध्यान करो। सुषुम्ना एक अति सूक्ष्म, ज्योतिर्मय सूत्रसदृश है। मेरुदण्ड के मध्य से जानेवाला यह चेतन मार्ग, मुक्ति का द्वार है। इसी में से होते हुए हमें कुण्डलिनी को ऊपर ले जाना होगा।

योगियों की भाषा में सुषुम्ना के दोनों छोरों पर दो कमल हैं। नीचेवाला कमल कुण्डलिनी के त्रिकोण को आच्छादित किये हुए है और ऊपरवाला ब्रह्मरन्ध्र में है। इन दोनों के बीच और भी पाँच कमल हैं, जो इस मार्ग के विभिन्न सोपान हैं। इनके नाम यथाक्रम इस प्रकार हैं -

सप्तम - सहस्रार।

षष्ठ - आज्ञा - नेत्रों के मध्य।

पंचम - विशुद्ध - कण्ठ के नीचे।

चतुर्थ - अनाहत - हृदय के समीप।

तृतीय - मणिपूर - नाभिदेश में।

द्वितीय - स्वाधिष्ठान - उदर के नीचे।

प्रथम - मूलाधार - मेरुदण्ड के नीचे।

प्रथम कुण्डलिनी को जगाना चाहिए, फिर उसे यथाक्रम एक कमल से दूसरे कमल की ओर ऊपर ले जाते हुए अन्त में मस्तिष्क में पहुँचाना चाहिए। प्रत्येक सोपान में एक मूर्तन स्तर है।

परिशिष्ट

संक्षेप में राजयोग

(कूर्मपुराण के कुछ अंशों का अनुवाद)

योगाग्नि मनुष्य के पाप-पिंजर को दग्ध कर देती है। तब सत्त्वशुद्धि होती है और साक्षात् निर्वाण की प्राप्ति होती है। योग से ज्ञानलाभ होता है; ज्ञान फिर योगी की मुक्ति के पथ का सहायक है। जिनमें योग और ज्ञान दोनों ही वर्तमान हैं, ईश्वर उनके प्रति प्रसन्न होते हैं। जो लोग प्रतिदिन एक बार, दो बार, तीन बार या सारे समय महायोग का अभ्यास करते हैं, उन्हें देवता समझना चाहिए। योग दो प्रकार के हैं; जैसे अभावयोग और महायोग। जब शून्य तथा सब प्रकार के गुण से रहित रूप से अपना चिन्तन किया जाता है, तब उसे अभावयोग कहते हैं। और जिस योग के द्वारा आत्मा का आनन्दपूर्ण, पवित्र और ब्रह्म के साथ अभिन्न रूप से चिन्तन किया जाता है, उसे महायोग कहते हैं। योगी इनमें से प्रत्येक के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार कर लेते हैं। हम दूसरे जिन योगों के बारे में शास्त्रों में पढ़ते या सुनते हैं, वे सब योग इस ब्रह्मयोग के - जिस ब्रह्मयोग में योगी अपने को तथा सारे जगत् को साक्षात् भगवत्-स्वरूप देखते हैं - एक अंश के बराबर भी नहीं हो सकते। यही सारे योगों में श्रेष्ठ है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि - ये राजयोग के विभिन्न अंग या सोपान हैं। यम का अर्थ है - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इस यम से चित्तशुद्धि होती है। शरीर, मन और वचन के द्वारा कभी किसी प्राणी की हिंसा न करना या उन्हें बुरा न कहना यह अहिंसा कहलाता है। अहिंसा से बढ़कर और

धर्म-नहीं। मनुष्य के लिए जीव के प्रति यह अहिंसा-भाव रखने से अधिक और कोई उच्चतर सुख नहीं है। सत्य से सब कुछ मिलता है, सत्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। यथार्थ कथन को ही सत्य कहते हैं। चोरी से या बलपूर्वक दूसरे की चीज को न लेने का नाम है अस्तेय। तन-मन-वचन से सर्वदा सब अवस्थाओं में मैथुन का त्याग ही ब्रह्मचर्य है। अत्यन्त कष्ट के समय में भी किसी मनुष्य से कोई उपहार ग्रहण न करने को अपरिग्रह कहते हैं। अपरिग्रह-साधना का उद्देश्य यह है कि किसी से कुछ लेने से हृदय अपवित्र हो जाता है, लेनेवाला हीन हो जाता है, वह अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है और बद्ध एवं आसक्त हो जाता है।

तप, स्वाध्याय, संन्तोष, शौच और ईश्वरप्रणिधान - इन्हें नियम कहते हैं। नियम शब्द का अर्थ है नियमित अभ्यास और व्रत-परिपालन। व्रतोपवास या अन्य उपायों से देह-संयम करना शारीरिक तपस्या कहलाता है। वेदपाठ या दूसरे किसी मन्त्रोच्चारण को सत्त्वशुद्धिकर स्वाध्याय कहते हैं। मन्त्र जपने के लिए तीन प्रकार के नियम हैं - वाचिक, उपांशु और मानस। वाचिक से उपांशु जप श्रेष्ठ है और उपांशु से मानस जप। जो जप इतने ऊँचे स्वर से किया जाता है कि सभी सुन सकते हैं, उसे वाचिक जप कहते हैं। जिस जप में ओठों का स्पन्दन मात्र होता है, पर पास रहनेवाला कोई मनुष्य सुन नहीं सकता, उसे उपांशु कहते हैं। और जिसमें किसी शब्द का उच्चारण नहीं होता, केवल मन ही मन जप किया जाता है और उसके साथ उस मन्त्र का अर्थ स्मरण किया जाता है, उसे मानसिक जप कहते हैं। यह मानसिक जप ही सब से श्रेष्ठ है। ऋषियों ने कहा है - शौच दो प्रकार के हैं, बाह्य और आभ्यन्तर। मिट्टी, जल या दूसरी वस्तुओं से शरीर को शुद्ध करना बाह्य शौच कहलाता है, जैसे - स्नानादि। सत्य एवं अन्यान्य धर्मों के पालन से मन की शुद्धि को आभ्यन्तर शौच कहते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही शुद्धि आवश्यक हैं। केवल भीतर में पवित्र रहकर बाहर में अशुचि रहने से शौच पूरा नहीं हुआ। जब कभी दोनों प्रकार के शौच का अनुष्ठान करना सम्भव नहीं, तब आभ्यन्तर शौच का अवलम्बन ही श्रेयस्कर है। पर ये

दोनों शौच हुए बिना कोई भी योगी नहीं बन सकता। ईश्वर की स्तुति, स्मरण और पूजाअर्चनारूप भक्ति का नाम ईश्वरप्रणिधान है।

यह तो यम और नियम के बारे में हुआ। उसके बाद है आसन। आसन के बारे में इतना ही समझ लेना चाहिए कि वक्षःस्थल, ग्रीवा और सिर को सीधे रखकर शरीर को स्वच्छन्द रूप से रखना होगा। अब प्राणायाम के बारे में कहा जाएगा। प्राण का अर्थ है अपने शरीर के भीतर रहनेवाली जीवनशक्ति, और आयाम का अर्थ है उसका संयम। प्राणायाम तीन प्रकार के हैं - अधम, मध्यम और उत्तम। वह तीन भागों में विभक्त है, जैसे - पूरक, कुम्भक और रेचक। जिस प्राणायाम में १२ सेकंड तक वायु का पूरण किया जाता है, उसे अधम प्राणायाम कहते हैं। २४ सेकंड तक वायु का पूरण करने से मध्यम प्राणायाम, और ३६ सेकंड तक वायु का पूरण करने से उत्तम प्राणायाम कहते हैं। अधम प्राणायाम से पसीना, मध्यम प्राणायाम से कम्पन और उत्तम प्राणायाम से उच्छ्वास अर्थात् शरीर का हल्कापन एवं चित्त की प्रसन्नता होती है। गायत्री वेद का पवित्रतम मन्त्र है। उसका अर्थ है, “हम इस जगत के जन्मदाता परम देवता के तेज का ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि में ज्ञान का विकास कर दें।” इस मन्त्र के आदि और अन्त में प्रणव लगा हुआ है। एक प्राणायाम में गायत्री का तीन बार मन ही मन उच्चारण करना पड़ता है। प्रत्येक शास्त्र में कहा गया है कि प्राणायाम तीन अंशों में विभक्त है - जैसे, रेचक अर्थात् श्वासत्याग, पूरक अर्थात् श्वासग्रहण और कुम्भक अर्थात् स्थिति - भीतर में धारण करना। अनुभवशक्तियुक्त इन्द्रियाँ लगातार बहिर्मुखी होकर काम कर रही हैं और बाहर की वस्तुओं के सम्पर्क में आ रही हैं। उनको अपने वश में लाने को प्रत्याहार कहते हैं। अपनी ओर खींचना या आहरण करना - यही प्रत्याहार शब्द का प्रकृत अर्थ है।

हृत्कमल में या सिर के ठीक मध्य देश में या शरीर के अन्य किसी स्थान में मन को धारण करने का नाम है धारणा। मन को एक स्थान में संलग्न करके, फिर उस एकमात्र स्थान को अवलम्बनस्वरूप मानकर एक

विशिष्ट प्रकार के वृत्तिप्रवाह उठाये जाते हैं; दूसरे प्रकार के वृत्तिप्रवाहों से उनको बचाने का प्रयत्न करते करते वे प्रथमोक्त वृत्तिप्रवाह क्रमशः प्रबल आकार धारण कर लेते हैं, और ये दूसरे वृत्तिप्रवाह कम होते होते अन्त में बिलकुल चले जाते हैं। फिर बाद में उन प्रथमोक्त वृत्तियों का भी नाश हो जाता है और केवल एक वृत्ति वर्तमान रह जाती है। इसे 'ध्यान' कहते हैं। और जब इस अवलम्बन की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती, सम्पूर्ण मन जब एक तरंग के रूप में परिणत हो जाता है, तब मन की इस एकरूपता का नाम है समाधि। तब किसी विशेष प्रदेश या चक्रविशेष का अवलम्बन करके ध्यानप्रवाह उत्थापित नहीं होता, केवल ध्येय वस्तु का भाव (अर्थ) मात्र अवशिष्ट रहता है। यदि मन को किसी स्थान में बारह सेकंड धारण किया जाए, तो उससे एक धारणा होगी; यह धारणा द्वादशगुणित होने पर एक ध्यान, और यह ध्यान द्वादशगुणित होने पर एक समाधि होगी।

सूखे पत्तों से ढकी हुई जमीन पर, चौराहे पर, अत्यन्त कोलाहलपूर्ण या डरावने स्थान में, दीमक के ढेर के समीप, अथवा जहाँ अग्नि या जल से किसी भय की आशंका हो, जहाँ जंगली जानवर हों, जो स्थान दुष्ट लोगों से भरा हो — ऐसे स्थानों में योग की साधना करना उचित नहीं। यह व्यवस्था विशेषकर भारत के बारे में लागू होती है। जब शरीर अत्यन्त आलसी या बीमार मालूम होता हो अथवा जब मन अत्यन्त दुःखपूर्ण रहता हो, तब भी साधना नहीं करनी चाहिए। किसी गुप्त और निर्जन स्थान में जाकर साधना करो, जहाँ लोग तुम्हें बाधा पहुँचाने न आ सकें। अपवित्र जगह में बैठकर साधना मत करना, वरन् सुन्दर दृश्य वाले स्थान में या अपने घर के एक सुन्दर कमरे में बैठकर साधना करना। साधना में प्रवृत्त होने के पहले समस्त प्राचीन योगियों, अपने गुरुदेव तथा भगवान् को प्रणाम करना और फिर साधना में प्रवृत्त होना।

ध्यान का विषय पहले ही कहा जा चुका है। अब ध्यान की कुछ प्रणालियाँ वर्णित की जाती हैं। सीधे बैठकर अपनी नाक के ऊपरी भाग पर दृष्टि रखो, पुनः दोबारा फिर उसी स्थान की परीक्षा करें विशेष रूप से

सहायता मिलती है। आँख के दो स्नायुओं को वश में लाने से प्रतिक्रिया के केन्द्रस्थल को काफी वश में लाया जा सकता है, अतः उससे इच्छाशक्ति भी बहुत अधीन हो जाती है। अब ध्यान के कुछ प्रकार कहे जाते हैं। सोचो, सिर के ऊर्ध्व देश में एक कमल है, धर्म उसका मूलदेश है, ज्ञान उसकी नाल है, योगी की अष्टसिद्धियाँ उस कमल के आठ दलों के समान हैं और वैराग्य उसके अन्दर की कर्णिका है। जो योगी अष्टसिद्धियाँ आने पर भी उनको छोड़ सकते हैं, वे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं इसीलिए अष्टसिद्धियों का बाहर के आठ दलों के रूप में, तथा अन्दर की कर्णिका का परवैराग्य अर्थात् अष्टसिद्धियाँ आने पर भी उनके प्रति वैराग्य के रूप में वर्णन किया गया है। इस कमल के अन्दर हिरण्य, सर्वशक्तिमान्, अस्पृश्य, ओंकारवाच्य, अव्यक्त, किरणों से परिव्याप्त परमज्योति का चिन्तन करो। उस पर ध्यान करो।

और एक प्रकार के ध्यान का विषय बताया जाता है :- सोचो कि तुम्हारे हृदय में एक आकाश है, और उस आकाश के अन्दर अग्निशिखा के समान एक ज्योति उद्भासित हो रही है - उस ज्योतिशिखा का अपनी आत्मा के रूप में चिन्तन करो; फिर उस ज्योति के अन्दर और एक ज्योतिर्मय आकाश की भावना करो; वही तुम्हारी आत्मा की आत्मा है - परमात्मस्वरूप ईश्वर है। हृदय में उसका ध्यान करो। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, महाशत्रु को भी क्षमा कर देना, सत्य, आस्तिक्य - ये सब विभिन्न व्रत हैं। यदि इन सब में तुम सिद्ध न रहो, तो भी दुःखित या भयभीत मत होना। प्रयत्न करो, धीरे धीरे सब हो जाएगा। विषय की लालसा, भय और क्रोध छोड़कर जो भगवान् के शरणागत हुए हैं, उनमें तन्मय हो गए हैं, जिनका हृदय पवित्र हो गया है, वे भगवान् के पास जो कुछ चाहते हैं, भगवान् उसी समय उसकी पूर्ति कर देते हैं। अतः ज्ञान, भक्ति या वैराग्य योग से उनकी उपासना करो।

“जो किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं रखते, जो सब के मित्र हैं, जो सब के प्रति अक्रुणकमित्र हैं, जिनका अहंकार घटा गया है, जो सदैव

सन्तुष्ट हैं, जो सर्वदा योगयुक्त, यतात्मा और दृढ़ निश्चयवाले हैं, जिनका मन और बुद्धि मुझमें अर्पित हो गयी हैं, वे ही मेरे प्रिय भक्त हैं। जिनसे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो लोगों से उद्विग्न नहीं होते, जिन्होंने अतिरिक्त हर्ष, दुःख, भय और उद्वेग त्याग दिया है, ऐसे भक्त ही मेरे प्रिय हैं। जो किसी का भरोसा नहीं करते, जो शुचि और दक्ष हैं, सुख और दुःख में उदासीन हैं, जिनका दुख चला गया है, जो निन्दा और स्तुति में समभावापन्न हैं, मौनी हैं, जो कुछ पाते हैं, उसी में सन्तुष्ट रहते हैं, जिनका कोई निर्दिष्ट घर-बार नहीं, सारा जगत् ही जिनका घर है, जिनकी बुद्धि स्थिर है, ऐसे व्यक्ति ही मेरे प्रिय भक्त हैं।”* ऐसे व्यक्ति ही योगी हो सकते हैं।

* * *

नारद नाम के एक पहुँचे हुए ऋषि थे। जैसे मनुष्यों में ऋषि या बड़े बड़े योगी रहते हैं, वैसे ही देवताओं में भी बड़े बड़े योगी हैं। नारद भी वैसे ही एक महायोगी थे। वे सर्वत्र भ्रमण किया करते थे। एक दिन एक वन में से जाते हुए उन्होंने देखा कि एक मनुष्य ध्यान कर रहा है। वह ध्यान में इतना मग्न है और इतने दिनों से एक ही आसन पर बैठा है कि उसके चारों ओर दीमक का ढेर लग गया है। उसने नारद से पूछा, “प्रभो, आप कहाँ जा रहे हैं?” नारदजी ने उत्तर दिया, “मैं वैकुण्ठ जा रहा हूँ।” तब उसने कहा, “अच्छा, आप भगवान् से पूछते आएँ वे मुझ पर कब कृपा करेंगे; मैं कब मुक्ति प्राप्त करूँगा।” फिर कुछ दूर और जाने पर नारदजी ने एक दुसरे मनुष्य को देखा। वह कूद-फाँद रहा था, कभी नाचता था तो कभी गाता था। उसने भी नारदजी से वही प्रश्न किया। उस व्यक्ति का कण्ठस्वर, वाग्भंगी आदि सभी उन्मत्त के समान थे। नारदजी ने उसे भी पहले के समान उत्तर दिया। वह बोला, “अच्छा, तो भगवान् से पूछते आएँ, कब तक मुक्त होऊँगा।” लौटते समय नारदजी ने दीमक के ढेर के अन्दर रहनेवाले उस ध्यानस्थ योगी को देखा। उस योगी ने

पूछा, “देवर्षे, क्या आपने मेरी बात पूछी थी?” नारदजी बोले, “हाँ पूछी थी।” योगी ने पूछा, “तो उन्होंने क्या कहा?” नारदजी ने उत्तर दिया, “भगवान् ने कहा, ‘मुझको पाने के लिए उसे और चार जन्म लगेगे।’ ” तब तो वह योगी घोर विलाप करते हुए कहने लगा, “मैंने इतना ध्यान किया है कि मेरे चारों ओर दीमक का ढेर लग गया, फिर भी मुझे और चार जन्म लेने पड़ेंगे!” नारदजी तब दूसरे व्यक्ति के पास गये। उसने भी पूछा, “क्या आपने मेरी बात भगवान् से पूछी थी?” नारदजी बोले, “हाँ, भगवान् ने कहा है, ‘उसके सामने जो इमली का पेड़ है, उसके जितने पत्ते हैं, उतनी बार उसको जन्म ग्रहण करना पड़ेगा।’ ” यह बात सुनकर वह व्यक्ति आनन्द से नृत्य करने लगा और बोला, “मैं इतने कम समय में मुक्ति प्राप्त करूँगा!” तब दैववाणी हुई – “वत्स, तुम इसी क्षण मुक्ति प्राप्त करोगे।” वह दूसरा व्यक्ति इतना अध्यवसायसम्पन्न था! इसलिये उसे वह पुरस्कार मिला। वह इतने जन्म साधना करने के लिए तैयार था। कुछ भी उसे उद्योगशून्य न कर सका। परन्तु वह प्रथमोक्त व्यक्ति चार जन्मों की ही बात सुनकर घबड़ा गया। जो व्यक्ति मुक्ति के लिए सैकड़ों युग तक बाट जोहने को तैयार था, उसके समान अध्यवसायसम्पन्न होने पर ही उच्चतम फल प्राप्त होता है।



हमारे अन्य प्रकाशन
स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य
योग

योगविषयक ७ ग्रन्थों का पूरा सेट

ज्ञानयोग

राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)

प्रेमयोग

कर्मयोग

भक्तियोग

ज्ञानयोग पर प्रवचन

सरल राजयोग

धर्म तथा अध्यात्म

धर्मविज्ञान

धर्मतत्त्व

धर्मरहस्य

हिन्दूधर्म

हिन्दूधर्म के पक्ष में

शिकागो वक्तृता

नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविवेचन

भगवान् श्रीकृष्ण और भगवद्गीता

भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)
वेदान्त
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त
आत्मतत्त्व
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग
मरणोत्तर जीवन

जीवनी

महापुरुषों की जीवनगाथाएँ
मेरे गुरुदेव
ईशदूत ईसा
पवहारी बाबा

सम्भाषणात्मक

विवेकानन्दजी के संग में
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप
विवेकानन्दजी के संस्मरण
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में
विवेकवाणी (स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाएँ)

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए

रामकृष्ण मठ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection
रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धनौली, नागपुर-४४० ०१२.

सोचो कि तुम्हारे हृदय में एक आकाश है,
और उस आकाश के अन्दर अग्निशिखा के समान
एक ज्योति उद्भासित हो रही है - उस ज्योतिशिखा
का अपनी आत्मा के रूप में चिन्तन करो;
फिर उस ज्योति के अन्दर और एक ज्योतिर्मय
आकाश की भावना करो; वही तुम्हारी आत्मा की
आत्मा है - परमात्मस्वरूप ईश्वर है।
हृदय में उसका ध्यान करो।

- स्वामी विवेकानन्द



श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

तथा अन्य आध्यात्मिक प्रकाशन

प्राप्त करने के लिए लिखें

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग)

रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर - ४४० ०१२

e-mail - rkm.nagpur@rkmpbngp.org
www.rkmathnagpur.org

ISBN 978-9-3848831-6-4



9 789384 883164